

## भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की अवधारणा

डॉ. शारदा वंदना

दर्शनशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची, झारखंड, भारत।

### प्रस्तावना

नीतिशास्त्र वह सुसंगत विचार-संग्रह है, जिसकी विषय-वस्तु मनुष्य के आचरण संबंधी नियमों तथा आदर्शों के निरूपण और उसके अनुरूप उनके कार्यों के मूल्यांकन से संबंधित है। नीतिशास्त्र समाज में रहनेवाले मनुष्यों के आचरण का आदर्शमूलक विज्ञान है। समाज में व्यक्ति दो चीजों से पहचाना जाता है। पहला ज्ञान और दूसरा उसका नैतिक व्यवहार। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए यह दोनों ही अति आवश्यक है। अगर ज्ञान सफलता की चाबी है, तो नैतिकता सफलता की सीढ़ी। एक के अभाव में दूसरे का पतन निश्चित है। नैतिकता के कारण ही विश्वास में दृढ़ता और समझ में प्रखरता आती है। नैतिकता ही वह गुण है, जो व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने में मदद करता है।<sup>1</sup>

भारतीय सामाजिक व्यवस्था 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः'<sup>2</sup> पर आधारित है। यह व्यवस्था सभी को जीने, सुरक्षित रहने और आगे बढ़ने का समान अवसर देती है। समाज के माध्यम से ही मानव नैतिक आदर्शों को प्राप्त करता है। नैतिकता, सामाजिक जीवन को सुगम बनाती है और समाज को अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित रखती है। नीतिशास्त्र वह विज्ञान है, जिसमें मानव-आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है। इससे मनुष्य के कर्तव्य और कर्म के औचित्य का निर्णय किया जा सकता है। नीतिशास्त्र, जीवन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं पर विचार करता है। नीतिशास्त्र का सैद्धांतिक पक्ष उन नियमों, आदर्शों और मानदंडों का समन्वय है, जिनके आधार पर मानव के चरित्र, आचरण और व्यवहार का मूल्यांकन होता है। समाज में कुछ ऐसे पूर्व निर्धारित मूल्य, मानदंड, परम्परा और आदर्श होते हैं, जिनके दायरे में रहकर ही व्यवहार करना होता है। उसे ही आदर्श व्यवहार कहा जाता है। सामाजिक मानदंडों के माध्यम से ही समाज, व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन करता है। इसलिए नीतिशास्त्र को सामाजिक संरचना का एक प्रमुख अंग माना जाता है।<sup>3</sup>

सामान्यतः जनमानस में नीति संबंधी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे कि मनुष्य नीतिमान होना चाहिए, उसका आचरण अच्छा होना चाहिए। कभी असत्य न बोले, अपने वचन का पालन करें आदि। इस तरह के कथन में समाज की यही अपेक्षा रहती है कि मनुष्य को नैतिक होना चाहिए। संक्षेप में यही कहना उचित होगा कि सदाचरण का संबंध नैतिकता से है तथा दुराचार का अनैतिकता से है और यदि यह सब कुछ सच भी हो, तो प्रश्न उठता है कि नीति का अर्थ क्या है? इस संदर्भ में बहुत ही कम लोग सोचते हैं। दर्शनशास्त्र की एक शाखा होने से नीति संबंधी भी विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करना आवश्यक है। नीति दर्शन में आचरण का अध्ययन है, किन्तु यह अध्ययन मनोवैज्ञानिक नहीं है। यह अध्ययन नीति निर्णय से संबंधित है। इसलिए आचरण का मूल्यांकन किया जाता है। यह करते समय जो भी मापदंड है क्या वह सभी स्थलों पर समान रूप से दिखाई देते हैं? अतः यह दिखाई देता है कि इस प्रश्न का उत्तर निषेधात्मक है। अर्थात् आचरण के मापदंड सभी स्थल पर समान रूप से नहीं है, क्योंकि यह विश्व परिवर्तनशील है। जिस तरह विश्व परिवर्तनशील है, उसी तरह समाज, संस्कृति आदि भी परिवर्तनशील है। प्रत्येक युग में कई संस्कृति के निर्माता हुये हैं। संस्कृति की रचना, भूत, भविष्य और वर्तमान में होती रहती है। जिस तरह समाज और

संस्कृति का विकास होते रहता है, उसी तरह नैतिक चेतनाओं का भी निरंतर विकास होता रहता है।<sup>4</sup>

समस्त मानव प्राणी यथासंभव नैतिक-जीवन व्यतीत करते हैं। नैतिकता में सभी का विश्वास है। सद्सत्, शुभाशुभ, कर्तव्य, अनुशासन आदि में हम आस्था रखते हैं। लेकिन हम अधिकांशतः इनके स्वरूप और प्रमाणिकता के उपर गंभीर विचार नहीं करते हैं। हम इनकी यथार्थता को मान लेते हैं और उसके अनुसार कर्म में प्रवृत्त होते हैं। यदि हम नैतिकता के इतिहास पर विचार करें, तो यह ज्ञात होता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के साथ ही किसी न किसी रूप में इसका भी जन्म हुआ। जब से मानव ने एक दूसरे के साथ मिलकर समाज का निर्माण किया और उसी में रहकर अन्य लोगों के सहयोग से अपनी समस्याओं का समाधान खोजने लगा। तभी से उसे कुछ ऐसे नियमों की आवश्यकता पड़ी जो उसकी तथा दूसरे मनुष्यों की इच्छाओं, रूचियों, आकांक्षाओं, उद्देश्यों तथा स्वार्थों में होने वाले संघर्ष को नियंत्रित कर सके। इनका पालन करके वह दूसरों के साथ सुखपूर्वक रहते हुए सामंजस्यपूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके। धीरे-धीरे इन्हीं नियमों ने सामाजिक परम्पराओं या रीति-रिवाजों का रूप ग्रहण कर लिया, जिनका पालन करना समाज के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक समझा जाने लगा। अतः इन सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों या रीति-रिवाजों से ही नैतिकता का विकास हुआ। इसी तरह मानवीय अवधारणाओं के विकास की सामाजिक, ऐतिहासिक, परिस्थितियों में मूल्यों की अवधारणा का भी विकास हुआ। मूल्यों का मानव जीवन में अत्यंत गहरा संबंध है। मनुष्य के जीवन में मूल्य किसी भौतिक वस्तु या मानसिक अवस्था के उस गुण का बोध कराता है, जिसके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं की पूर्ति होती है। इस रूप में मूल्य मानव के कर्म एवं प्रयास की दिशा निर्धारण के क्रम में उसके जीवन के विकास के साथ-साथ चरित्र का भी मूल्यांकन करते हैं। मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्य ही ऐसी अवधारणाएँ हैं, जो नैतिकता के मूल्यांकन के मुख्य आधार होते हैं। इन्हीं की सहायता से मनुष्य शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, नैतिक-अनैतिक तथा सत्य-असत्य आदि में भेद करता है। समाज का आदर्श इस बात पर निर्भर करता है कि उस समाज में मनुष्यों की नैतिक मूल्यों का अनुशीलन कर रहे हैं। यदि उनकी आस्था, मान्यता और गति सकारात्मक है, तो निश्चित ही उस समाज का विकास आदर्श एवं तीव्र गति से होगा।<sup>5</sup>

भारत के इतिहास और संस्कृति का अवलोकन किया जाये तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत के आधुनिक समाज की अपेक्षा वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति में लोगों के नैतिक मूल्यों का ज्ञान, आस्था, मान्यता और उनके अनुशीलन की गति सकारात्मक थी, जिसके कारण आज भी भारत की संस्कृति को विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता है और लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। शुरु में भारतीय संस्कृति में नैतिकता एवं नैतिक मूल्यों का व्यवस्थित नियमों के रूप में प्रचलन नहीं था। नैतिकता एवं नैतिक मूल्यों का निर्धारण मनुष्य के सामान्य व्यवहार एवं धार्मिक रीति-रिवाजों तथा क्रिया-कलापों के माध्यम से होता था। प्राचीन भारत में वैदिक एवं हिन्दू, जैन तथा बौद्ध धर्मों द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियम एवं उनके मूल्यों का विस्तृत वर्णन इन धर्मों के ग्रंथों में मिलता है।<sup>6</sup> भारतीय संस्कृति की आधारशिला नैतिकता है और यही वह मूल तत्व है, जो

आत्मा को विकास की ओर उन्मुख करता है। आदिम-युग में जब मनुष्य जंगलों में रहता है, जानवरों का शिकार कर अपना जीवनयावन करता था। उस समय वह मानवीय मूल्यों और सद्गुणों से पूर्ण रूपेण वंचित था, नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं थी। लेकिन जैसे-जैसे मुनष्य सभ्य होता गया, उसने नैतिकता का विकास होता गया। नैतिकता का विकास जब अपनी सीमा का अतिक्रमण कर गया तो उसकी विरोधी अनैतिकता सामने आकर खड़ी हो गयी। वैदिक काल को हम नैतिकता की सीमा का चरमोत्कर्ष मान सकते हैं। ऐसा नहीं कि विरोधी रूप सहसा प्रकट हो जाता है, बल्कि उसके पीछे मानव मन का विचलित होना है।<sup>47</sup> वस्तुतः मानव गुण-अवगुण, सात्विकता-पार्श्विकता, राग-द्वेष, दयालुता-क्रूरता आदि भावनाओं से युक्त एक जटिल प्राणी है। मानव की इस जटिलता में जब सात्विकता की अधिकता होती है, तो वह नैतिक कहलाता है और जब उसमें असात्विकता की प्रधानता होती है, तो अनैतिक बन जाती है। तात्पर्य है कि मानव में देव और दानव दोनों का वास है। नैतिकता मनुष्य के उन सर्वोत्तम गुणों एवं आचरण के प्रतिमानों का निचोड़ है, जो मानव ने अपने पशु-जीवन से मानव जीवन तक की दूरी तय करने के बीच अर्जित किए हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो नैतिकता आत्मा से लोक की ओर, संकीर्णता से उदारता की ओर, हिंसा से अहिंसा की ओर, क्रूरता से करुणा की ओर, स्वार्थ से त्याग की ओर, असत्य से सत्य की ओर मानव की निरंतर यात्रा है।<sup>48</sup>

स्वार्थ, संघर्ष और कलहपूर्ण स्थिति से बचने और शांतिमय जीवन व्यतीत करने के लिए वैदिक ऋषियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मूल्य की परिकल्पना की।<sup>49</sup> इस प्रकार की परिकल्पना भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त कहीं नहीं पायी जाती है, जहां सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानने के सिद्धांत को प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वैदिक काल में जहां एक ओर श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई वहीं दूसरी ओर वर्ण व्यवस्था, यज्ञों के प्रचलन तथा कर्मकांडों के कारण दोषपूर्ण अमानवीय परम्पराएं भी शुरू हो गयी थी, जिनके कारण समाज में हिंसा, असमानता, शोषण, उत्पीड़न और अन्याय का बोलबाला छा गया था, जिसके परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गयी थी।<sup>50</sup>

वैदिक संस्कृति के अंतिम समय और उपनिषदों के आरम्भिक काल में ऋषियों ने वेदों के युग की अवस्था को समाप्त करने की आवश्यकता अनुभव की थी। इसके लिए उन्होंने ब्रह्म और आत्मा की परिकल्पना की। इस परिकल्पना का मूल कारण यह था कि जगत में जब सब कुछ ब्रह्ममय एवं मनुष्य ब्रह्म का अंश है, फिर मनुष्य-मनुष्य में भेद क्यों? शोषण, अन्याय और उत्पीड़न क्यों? ब्रह्म पूर्ण है और जगत भी पूर्ण है क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है तथा प्रलयकाल में पूर्ण का पूर्णत्व लेकर पूर्ण ब्रह्म बचा रहता है। जब मनुष्य में इस प्रकार का भाव पैदा हो जायेगा तब सभी प्रकार के दुःख समाप्त हो जायेंगे। भारत में अहिंसा के सिद्धांत का प्रयोग प्रथम दृष्टया उपनिषदों के ऋषियों द्वारा वैदिक यज्ञों की क्रूरता को कम करने के संबंध में किया गया। अहिंसा को आज भी मानव समाज के लिए श्रेष्ठ नैतिक मूल्य स्वीकार किया जाता है। मनुष्य के जीवन में शांति और आनंद की प्राप्ति के लिए अन्य उपनिषदों में भी इस प्रकार के नैतिक मूल्यों की बातें कहीं गई हैं। उपनिषदों के दर्शन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आत्मा ज्ञान एवं ब्रह्म ज्ञान होने से मनुष्य की दुःखों से निवृत्ति हो सकती है।<sup>51</sup>

वैदिक संस्कृति में गीता एक महत्वपूर्ण धर्म ग्रंथ है। गीता के अनुसार आत्म ज्ञान और निष्काम कर्म योग द्वारा दुःखों से निवृत्ति प्राप्त करके मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। आत्म ज्ञान के बारे में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं “ जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है और जो इसको मरा मानता है और दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा न मरता है और न मारा जाता है”<sup>52</sup> जैसे मुनष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को प्राप्त करता है। गीता के पांचवें अध्याय में दुःखों की निवृत्ति के लिए निष्काम कर्म योग के नैतिक मूल्य का प्रावधान किया गया है। कर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन तेरा कर्म में अधिकार है फल में नहीं”<sup>53</sup> इस प्रकार उपनिषदों और भगवद्गीता द्वारा

प्रतिपादित नैतिक मूल्य विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक है, जिनका ज्ञान और अनुशीलन करने से मुनष्य का कल्याण संभव हो सकता है।<sup>54</sup> भारतीय संस्कृति में दर्शन, धर्म तथा नीति से संबंधित विभिन्न विचाराधारों का विकास सूत्र काल में हुआ। इस काल में न्याय, वैशेषिक, संख्या, योग्य, मीमांसा और वेदांत जैसे महत्वपूर्ण दर्शनों का विकास हुआ जिनमें जीवन, जगत तथा परमसत् की व्याख्या के साथ-साथ मनुष्य के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन से संबंधित नैतिक मूल्यों के अवधारणाओं का तीव्र गति से विकास हुआ। यद्यपि इस काल में भारत में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई लेकिन उन सभी पद वेद, उपनिषद तथा भगवत् गीता का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।<sup>55</sup> यदि यह कहा जाय कि इस काल में मानव कल्याण, सुख शांति तथा आनंदमय जीवन व्यतीत करने से संबंधित जो भी मूल्य पाये जाते हैं वे सभी प्राचीन मूल्यों को दोहराने मात्र है, तो अतिशयोक्ति नहीं है, लेकिन यहां पर एक अन्य महत्वपूर्ण स्थिति हमारे सामने यह उपस्थित होती है कि मानव कल्याण को ध्यान में रखकर वैदिक संस्कृति में जितना मूल्यों के सृजन पर चिंतन-मनन किया गया था। उतना कार्य आगे नहीं हो पाया, फलस्वरूप वेदों के युग से जो कार्यकांड, यज्ञ, अंधविश्वास और वर्णव्यवस्था जैसी परम्पराएं चली आ रही थी। उन पर कोई अंकुश नहीं लग पाया। इसलिए उपनिषदों के युग से ही मानव कल्याण तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना को लेकर एक नई संस्कृति का आरंभ हो गया था, जो आगे चलकर श्रमण संस्कृति के नाम से जानी जाती है। इस संस्कृति में महावीर और बुद्ध का योगदान महत्वपूर्ण रहा था।<sup>56</sup>

श्रमण संस्कृति के अंतर्गत महावीर और बुद्ध के साथ-साथ कुल त्रिषड् श्रमण संघ थे। ये सभी वैदिक संस्कृति में प्रचलित यज्ञ-याज्ञों, कर्मकांडों, अंधविश्वासों और वर्णव्यवस्था आदि के प्रबल विरोधी थे। इसका अर्थ यह है कि वैदिक संस्कृति में मानव कल्याण के लिए जिन नैतिक मूल्यों का प्रावधान किया गया था, उन मूल्यों का श्रमण संस्कृति के आते-आते या तो अवमूल्यन हो चुका था या श्रमणों के द्वारा परिभाषित मूल्यों की तुलना में वे अप्रासंगिक सिद्ध हो रहे थे।<sup>57</sup>

श्रमण संस्कृति के प्रथम महत्वपूर्ण स्तम्भ महावीर स्वामी थे। इनका जन्म 599 ई.पू. में हुआ था। महावीर स्वामी ने जैन धर्म में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों का प्रावधान किया है। महावीर ने अपने शिष्य गौतम स्वाती को नैतिक मूल्यों का उपदेश देते हुए कहा है कि हे गौतम कषाय चार हैं - क्रोध, मान, माया और लोभ”<sup>58</sup> ये मनुष्य के नैतिक पतन में सहायक सिद्ध होते हैं। महावीर ने अपने धर्म में मनुष्य की पांच बुराइयों को स्पष्ट रूप से बताया है। ये बुराइयां इस प्रकार हैं। हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह”<sup>59</sup> बुराइयों को समाप्त करने के लिए महावीर ने पांच प्रकार के नैतिक मूल्यों का प्रावधान किया है। जिनका अनुशीलन करके मनुष्य अपना एवं समाज का कल्याण कर सकता है। वे नैतिक मूल्य इस प्रकार हैं- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इसी प्रकार जैन परम्परा में श्रमण बनने के लिए सात प्रकारके दुर्व्यसनों का त्याग करना आवश्यक बताया गया है। जैसे-जुआ खेलना, मांसाहार, मदिरापान, वेश्यावृत्ति, शिकार, चोरी तथा पर पर स्त्रीगमन”<sup>60</sup> ये संदर्भ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जैन धर्म श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों पर आधारित धर्म है। जैन परम्परा में विश्वास है कि मुनष्य इन नैतिक मूल्यों का अनुशीलन कर अपने जीवन में अंततः महत्तम कल्याण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।<sup>61</sup>

श्रमण संस्कृति के दूसरे महत्वपूर्ण स्तम्भ बुद्ध थे। बुद्ध ने वैदिक संस्कृति में प्रचलित अंधविश्वासों, पाखंडों, कर्मकांडों और वर्णव्यवस्था की आलोचना कर अपने धर्म और नीतिशास्त्रीय नियमों के अनुसार चार आर्य सत्त्यों की महान अवधारणा को प्रतिपादित किया तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए बृहत् कुशल कर्मों की सूची बनायी, जिनका विवरण त्रिपिटकों तथा धम्मपद में हमें मिलता है। संक्षेप में बुद्ध ने पंचशील, सत्य, अहिंसा, अचौर्य ब्रह्मचर्य तथा नशा वर्जन एवं चार ब्रह्मबिहार, मैत्री, करुण, मुदिता तथा उपेक्षा और कुशल कर्म माता-पिता की सेवा”<sup>62</sup> आचार्य की सेवा”<sup>63</sup> मित्रों की सेवा”<sup>64</sup> सेवक-स्वामी के कर्तव्य”<sup>65</sup> श्रमणों की सेवा एवं मध्यम मार्ग के सिद्धांतों को प्रतिपादित कर श्रेष्ठ

नैतिक मूल्यों की स्थापना की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्ध द्वारा प्रतिवेदित सम्पूर्ण नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर ही आधारित था।

### निष्कर्ष

आज भारत में नैतिक मूल्यों की स्थिति अत्यंत खराब एवं सोचनीय है, क्योंकि आज भारत में विशुद्ध संस्कृति का अभाव है। भारत में वर्तमान समय में जो संस्कृति प्रवाहमान है वह विशुद्ध न होकर एक संस्कार संस्कृति के रूप में है। यद्यपि वर्तमान भारतीय संस्कृति पर वैदिक संस्कृति एवं श्रमण संस्कृति, यूनानी संस्कृति, इस्लाम और आंग्ल संस्कृतियों का स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं सीधा प्रभाव दिखाई पड़ता है। आज भारतीय संस्कृति में नैतिक और मानवीय मूल्यों का हास हो रहा है। इसका कारण यह है कि मनुष्य और समाज को ऐसी प्रवृत्तियों होती है कि वे विभिन्न संस्कृतियों के समागम के समय अपने मौलिक सांस्कृतिक मूल्यों के बजाय अन्य संस्कृतियों के खराब मूल्यों और परम्पराओं से शीघ्र प्रभावित होते हैं। इसी कारण आज वैदिक एवं श्रमण संस्कृति के द्वारा प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य केवल धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र के ग्रंथों की शोभा बढ़ा रहे हैं। लेकिन व्यवहार में इनका प्रभाव कम होता जा रहा है, जो चिंता का विषय है।

### संदर्भ-सूची

1. मिश्र, डॉ. हृदयनारायण: नीतिशास्त्र (सिद्धांत तथा प्रयोग)
2. पालि वांगमय में बोधिसत्व सिद्धांत, डॉ. भदंत सावंगी मेधंकर, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 2000, पृ-123
3. मनुस्मृति-92/6 अनु. हरिशचंद्र विद्यालंकार, वैदिक धर्मशास्त्र प्रकाश संस्था, दिल्ली, सं.-2016
4. महानारायणोपनिषद्
5. ईशावास्योपनिषद्, शांतिपाठ, अनु. शंकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, नवम संस्करण, सं.-2016, पृ-11
6. छांदोग्य उपनिषद् (17/4) अनु. शंकरभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सातवां, संख्या.-2050
7. गीता-19/2, गीता प्रेस, गोरखपुर, बीसवां वां-2014
8. वही, 2012
9. वही, 02/47
10. दीघनिकाय-1/1 (ब्रह्मजाल सुत्त), अनु. राहुल सांकृत्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्, 1960
11. भारतीय दर्शन, महामहोपाध्याय डॉ. उमेश उ. प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पंचम सं.-2003, पृ.-99
12. जैन धर्म, मुनि सुशील कुमार, मा.भा. श्वे. स्थानक वासी जैन कांफ्रेंस भवन, नई दिल्ली, 1985, पृ.-126
13. वही, पृ.-179
14. वही, पृ.-183
15. भारतीय दर्शन, मा. डा. उमेश मिश्र, वही, पृ.-134
16. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 1994, पृ.—94
17. दीघ निकाय-317, सिगालोवादसुत्त, वही-275
18. वही, पृ.- 275
19. वही, पृ.- 276
20. वही, पृ.- 276
21. डॉ वशिष्ठ नारायण सिन्हा, जैन धर्म में अहिंसा, काशी विद्यापीठ वाराणसी, 1988
22. मत्स्य पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सातवां संस्करण, 2068, अध्याय-59
23. जे. एन. सिन्हा, नीतिशास्त्र
24. डॉ. डी.पाठक, भारतीय नीतिशास्त्र
25. चौरसिया, डॉ. एम.पी.: अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र
26. मिश्र, प्रो. नित्यानंद, नीतिशास्त्र (सिद्धांत तथा प्रयोग)